IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

स्त्री विमर्श के बाहर असगर वजाहत और स्वयं प्रकाश की स्त्री

अजीत कुमार
पी.एचडी. स्कॉलर
वीर नर्मद दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय,
सूरत गुजरात

इक्कीसवीं शताब्दी के साहित्यिक मंचों पर विमर्शों का स्वर सर्वाधिक मुखर हुआ है। साहित्य के नये विषयों ने अपनी मौलिकता में पुराने साहित्य और साहित्यकारों को भी स्थान दिया है। यह कोई नयी बात नहीं है परंतु यह स्थान कितना आलोचनात्मक और रचनात्मक है यह पाठक के अपने विवेक और साहित्य को देखने की दृष्टि पर निर्भर करता है। इस आलोक में हम स्त्री और दलित विमर्श के आकाश में गहराई अस्मितावादी आवाजों को सुनने और उनकी बुनियादी विचारधारा, उनकी दैहिक स्वतंत्रता, परिवार के परंपरागत ढांचे में उनकी भूमिका और योगदान के साथ उनके त्याग और संघर्ष को समझने का प्रयास करेंगे।

1980 के बाद के कथा साहित्य में यह स्वर स्वाभाविक रूप से इसलिए मुखरित होता है क्योंकि यही वह समय है जिसमें हमारे समाज में व्यापक और गहरे परिवर्तन होने का आरंभ होता है। इन सभी परिवर्तनों के समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को जिस रूप में हम देखते हैं वह दृष्टि भी परंपरागत सोच से बाहर नहीं निकल पाती। इसलिए परिवर्तनों के प्रति हमारी दृष्टि कितना सहज महसूस कर रही है यह भी विचारणीय होता है। कथाकार स्वयं प्रकाश ने इस दृष्टि के प्रति हमें सजग किया है। ऐसे में आप सोच सकते हैं कि क्या साहित्यकार हमारे दृष्टिकोण को भी परिवर्तित करने का प्रयास करता है? तो हाँ, साहित्यकार केवल हमें कहानियाँ नहीं सुनाता। अपनी रचनाओं के माध्यम से वह हमारे सामने ऐसे सवाल लेकर आता है जिनका नैतिक पक्ष अगर हम पर हावी होने लगे तो वह हमारे सोचने के तरीके को भी प्रभावित कर देता है।

अस्सी के दशक के सर्वाधिक चर्चित हिंदी कथाकारों में स्वयं प्रकाश का नाम लिया जाता है। उनकी कहानियों के विविध पक्ष हैं परंतु उनमें से स्त्री पक्ष मेरी समझ में सबसे अधिक प्रभावित करने वाला पक्ष है। अपने समकालीन कथाकारों में उनकी कहानियों के स्त्री पात्र भारतीय समाज की मौलिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं को

आवाज देते हैं। इसलिए यह विमर्शवादी कहानियों के केंद्र से बाहर हैं। परंतु इन कहानियों के पात्र ज़मीनी हकीकत को समझाते हुए पाठक के समक्ष उभरते हैं इसलिए जब पाठक कहानी पढ़कर पुस्तक बंद करता है तो उसके मानस पटल पर तूफान मंडराने लगता है। शांति से बैठा हुआ पाठक अपने सोचने के तरीके में बुनियादी परिवर्तन करने पर विवश हो जाता है। वह स्वयं को उस कहानी के पात्रों से इस कदर जोड़ लेता है कि उसे उनमें अपना ही प्रतिबिंब नज़र आने लगता है और कहीं न कहीं वह खुद को भी अस्मिता के लिए संघर्ष करता वह पात्र समझ लेता है।

वर्तमान समय स्त्री-अधिकार के लिए प्रयासरत लेखन का है। इस दौर में स्त्रियों का अपने अधिकार के प्रति जागरुक हो कर सत्ता और समाज से संघर्ष करते हुए देखा जा रहा है। इसके साहित्यिक रूप को हम स्त्री-विमर्श के नाम जानते हैं। लेखिन स्वयं प्रकाश ने अपनी कहानियों में कहीं भी विमर्श को जानबूझ कर शामिल नहीं किया है। इसका मतलब यह है कि स्वयं प्रकाश का स्त्री विमर्श दूसरे तरीके से उभर कर आता है। स्त्री विषय पर लिखना, स्त्री की पीड़ा और दबाई गई आवाज को स्वयं प्रकाश अपनी कहानियों में अलग तरीके से उठाते हैं। इनकी तमाम कहानियों में स्त्री की समस्याएं उठाई गई हैं परंतु कहीं भी तथाकथित स्त्री-विमर्श के दायरे में लिखे जा रहे साहित्य से इसका कोई संबंध नहीं हैं। स्वयं प्रकाश इन विमर्शों से अलग होकर सम्पूर्ण जीवन को उठाते हैं और कहीं भी किसी को जानबूझ कर दोषी नहीं ठहराते।

उदाहरण के लिए मंजू फालतू कहानी को देखा जा सकता है। उनकी कहानी **'मंजू फालतू'** योग्यता प्राप्त नई लड़की की कहानी है। स्त्री और पुरुष को जब एक बराबर योग्यता प्राप्त हो और दोनों में कहीं कोई टकराव नहीं होने पर भी हमारे समाज में ऐसी कौन सी समस्या है जो स्त्री के पेशेगत जीवन को हाशिये पर ढकेल देते हैं। मंजू समर्थ है किन्तु फिर भी जीवन की जटिलताएँ उसे धीरे-धीरे अपनी गिरफ्त में ले लेती हैं। वह नौकरी और मातृत्व के बीच फंस कर रह जाती है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है वैसे वैसे मंजू अपने पेशेवर जींदगी में पिछड़ती जाती है। इंडस्ट्री में आउट-डेटेड लोगों की कहीं कोई ज़रूपरत नहीं।

इस कहानी में एक शहरी मध्यवर्गीय परिवार के भीतर जिन समस्याओं को अमूमन देखा जाता है वहीं स्वयं प्रकाश ने बड़ी कलात्मकता के साथ पाठकों तक पहुंचाने का सफल प्रयास किया है। समकालीन कहानियों विशेषकर विमर्श की कहानियों में स्त्री के जिस समस्या को उठाया जाता है उनमें आरोपित किए गए दर्द और पीड़ा का आभाष होता है। 'मंजू फालतू' कहानी पुरुष वर्चस्व को नहीं बल्कि भारतीय समाज के नियमों में फंस कर रह जाने वाली मंजू को प्रतिक्रिया करते हुए नहीं दिखाया गया। इसकी वजह यह है कि हमारे विचारों में स्त्री पुरुष के जो प्राकृतिक दायित्व हैं हम उससे ही संचालित होना चाहते हैं।

"लेकिन नितिन का घर? तो क्या यह उसका घर नहीं? यह घर उसने नहीं बनाया। रेडीमेड कपड़े या खाने जैसा है। उसे मिल गया है। फिट भी नहीं है। कहीं से ढीला है कहीं फंसता है। अल्टर करने का टाइम भी नहीं है। करेगी कभी टाइम मिला तो।''[1] शादी के बाद बच्चे और फिर गृहस्थी की जिम्मेदारियों के प्रति जवाबदेही में अपने ही द्वारा हासिल मुकाम का त्याग भी करती है। बच्चों के कुछ बड़ा होने के बाद फिर से नौकरी करनी

चाहती है तो पता चला कि ज्ञान और तकनीक की दुनिया के बदलाव उसे पुराना कर चुके हैं। उसकी योग्यता अब पुरानी हो गई और इंडस्ट्री को उसकी ज़रुरत नहीं रही। तभी एप्लीकेशन के कॉलम में उसके पास 'फालतू' लिखने के अलावा कुछ नहीं बचा । यह स्वयं प्रकाश की विशिष्टता का एक बहुत अच्छा उदाहरण है जिसमें उन्होंने मंजू को न एक नाराज औरत बनाया है और न दयनीय। बस इस सामाजिक ताने-बाने में उसके उलझाव को प्रस्तुत किया है।

मंजू किसी से डरकर अपने फैसले नहीं लेती, न ही वह अपने अधिकारों के प्रति लापरवाह है। अपितु वह जो भी निर्णय लेती है अपनी इच्छा से लेती है। फिर भी शादी के बाद उसे अपने भीतर के द्वंद्व से गुज़रना पड़ता है।

स्वंय प्रकाश के यहाँ स्त्री को एक विषय के रूप नहीं बल्कि सामाजिक दृष्टि में उसकी अहमियत को दिखाने के लिए उठाया गया है।

'अशोक और रेणु की असली कहानी' इस अध्ययन में बेहद महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अशोक और रेणु अच्छे दोस्त है, बाद में पति-पत्नी हो जाते हैं। घर परिवार में सब खुशहाल चल रहा होता है। एक दिन बाजार से लौटते हुए घर के बाहर अशोक औऱ रेणु को बच्चों के साथ बैडमिटंन खेलने का मन कर जाता है।

अशोक को रेणु लगातार तीन बार हरा देती है। इस बात पर अशोक बैडमिंटन फेंक कर चला जात है। कहानी यही पर खत्म हो जाती है। यह हार अशोक की नहीं मर्दवादी मानसिकता की है। अशोक अपनी इस कहानी से मर्दवादी मानसिकता की पोल खोल देते है।

एक अन्य कहानी में स्त्री जीवन के दर्द को चित्रित करते हैं। प्रसव की पीड़ा से बेहाल सुमि के मन का भय किस तरह और भी अधिक गहरा होता जाता है,भाषा के माध्यम से स्वयं प्रकाश ने उसे गढ़ने की सफल कोशिश की है। साथ ही स्त्री होने के अपने दर्द को भी बयान करने का प्रयास इस कहानी में किया गया है।

असगर वजाहत की कहानियों में स्त्री

असगर वजाहत ने अपनी कहानियों में स्त्री को एख विषय के रूप में नहीं उठाया है। न ही नारी पात्रों के चरित्र निर्माण पर भी उनका कोई विशेष आग्रह दिखाई देता है। उनकी कहानियों में भारतीय समाज में स्त्रियों के सामान्य जीवन से संबंधित कुछ चरित्र अवश्य है परंतु किसी विचार को स्थापित करने का प्रयास असगर वजाहत की कहानियों में नहीं दिखाई देती। असगर वजाहत अपनी कहानियों में स्त्री को घर के भीतर अपनी जिंदगी को खपाते हुए दिखाते हैं जो भारतीय परिवार के हर वर्ग की सच्ची कहानी है।

"माई घर में रहती कहा है। तड़के रावी में नहाने चली जाती है, उसके बाद कभी सुबह अकिल साहब के यहां बड़िया डाल रही है, तो कभी नफीसा को अस्पताल ले जा रही है, कभी बेगम साहब के आफता के लड़के की तीमारदारी कर कही है तो शाम को सकीना को अचार डालना सीखा रही है ....शत में दस बजे लौटती है।"1

यह सच है कि स्त्रियों का जीवन घर को बनाए और उसे चलाने में ही खप जाता है। असगर वजाहत समय के साथ सच को स्वीकारने वाले यथार्थवादी रचनाकार हैं। इसलिए यह स्वाभाविक है कि किसी आदर्श स्थिति की कल्पना से बचे रहते हैं और कड़वे सच को पाठक के समक्ष रखते हैं। दहेज प्रथा, नारी शोषण, स्त्री के प्रति कामुक दृष्टि, हिंसा आदि के विविध रूप इनके साहित्य में हमें दिखाई देते हैं परंतु विमर्श की स्थिति नहीं बनाते। असगर वजाहत यह समझते हैं कि भारतीय समाज जिस नकली आदर्श को दिनचर्या का एक काम मानता है परंतु व्यावहारिक रूप से उसका कोई सरोकार स्त्री पक्ष में नहीं दिखाई देता। अपनी अपनी पत्रियों का सांसकृतिक विरासत कहानी में भारतीय़ मध्य वर्ग के मानसिकता को उद्घाटित करते हुए असगर वजाहत दिखाते हैं कि पुरूष वर्ग ने अपनी सुविधा के लिए स्त्रियों को अपना गुलाम बना कर रखा है। इस कहानी में 'शाली जी' को कमला की माँ की भूमिका अदा करने के लिए मान मुनौवव्ल को चित्रित किया गया है।

शीला जी अपने समय की एक प्रगतीसीळ महिला हैं। परंतु उनकी प्रगतिशीलता का भेद तब खुलता है जब उनके पति प्रो. साहब उनको फिल्म में काम करने की अनुमति नहीं देते।

"ओवरसियर महोदय काम आए। उन्होंने कहा कि शीला जी इस काम के लिए तैयार हो सकती हैं। ओवरसियर महोदय यानी मलकानी जी ने शीला जी के बारे में जो कुछ बताया था उससे यह आशा बँधी थी कि वे काम कर सकती हैं। शीला जी स्थानीय गर्ल्स कालिज की सबसे प्रगतिशील महिला थीं। उन्होंने महिला क्लब बनाया था। वे कविताएँ लिखती थीं। ड्रामे कराती थीं। भाषण देती थीं। बिना साड़ी का पल्लू सिर पर डाले बाहर निकलती थीं। मर्दों से खुलकर बातचीत करती थीं। बहुत सम्मानित और कस्बे के जीवन में महत्त्वपूर्ण थीं। मलकानी उनका जिक्र इस तरह करते थे कि लगता था वे शीला जी के प्रशंसक से कुछ अधिक ही हैं। बहरहाल फिल्मों में सब कुछ चलता है। मैंने सोचा हमारा काम होना चाहिए, शीला चाहे मलकानी की प्रेमिका हो या उनकी माताजी हों, हमें क्या करना है। मलकानीजी से यह भी मालूम हुआ था कि शीला जी के पति किसी दूसरे शहर में एक कालिज के प्रध्यापक हैं। आते-जाते रहते हैं। इसका मतलब यह था कि काम बन सकता है।"3

लोगों की नजर में किसी स्त्री की यह छवि देख कर ऐसी धारणा हो सकती है परंतु भारतीय समाज जिस चश्में से महिलाओं को देखता है वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। इस कहानी ने मध्यवर्ग में महिलाओं की व्सतविकता को प्रदर्शित कर दिया है। जहाँ एक तरफ मलकानी प्रो. साहब के बारे में कहता है कि " साला बड़ा प्रोफेसर बना फिरता है। तीन बच्चों की अम्मा को कोई उठा ले जाएगा क्या?... पढ़ाई लिखाई सब गधे पर लाद दी है उसने...इससे अच्छा था कही क्लर्क लग जाता...पक्का पुरातनपंथी जड़ व्यक्ति है। आधुनिक विचार तो उसे छू तक नहीं गये हैं।"[4]

मलकानी का यह विचार प्रोफेसर साहब के प्रति नहीं दरअसल वह अपने स्वयें के व्यक्तिव को उजागर करता है। असगर वजाहत इस कहानी में भी ओवरसिय यानी, मलकानी के चरित्र के जरिये भारतीय पुरूष के दोहरे चरित्र को रचने का प्रयास करते हैं।

कहानी के नेरेटर जब मलकानी के घर पर आतिथ्य का लाभ ले रहा था उस समय भी उसकी सेवा में मलकानी के परिवार में उसकी पत्नी और बेटियां उसकी चाकरी कर रही थी। इस कहानी में असगर वजाहत ने स्वयं प्रकाश की तरह सत्त्री के प्रति अपनी चिंता को प्रकट करने का कार्य किया है।

"हवा में हल्की-सी ठंडक थी। ढ़ाक के जंगल और नर्मदा के ऊपर से हवा चुपचाप गुजर रही थी। मैं मलकानी के उसे वाक्य के बारे में सोच रहा था जो उसने डॉक्टर दीक्षित के बारे में कहा था- वह आदमी शीला जी के सांस्कृतिक विकास में बाधा है... और मलकानी?[5]

कहानी यहाँ पर समाप्त हो जाती है और पाठक अपने भीतर सिकुड़ जाता है। भाषण और आदर्श से अगर काम चल सकता तो यह समाज कब का आदर्श को प्राप्त कर लेता। लेकिन असगल वजाहत और स्वयं प्रकाश आद्रश के नहीं यथार्थ के रचनाकार हैं। उनकी रचनाएं हमारे समाज के कड़वे सत्य को प्रस्तुत करती हैं।

सात आसमान उपन्यास में असगर वजाहत ने स्त्रियों के ऐसी स्थिति को चित्रित किया है जिसे भारतीय समाज लगभग गाली की तरह उपयोग करता है। सामंती समाज में इस तरह के शौक पालना शान की बात मानी जाती थी। अपने परिवेश के लोगों के जीवन से कहानियों को उठाने के क्रम में असगर वजाहत लिखते हैं-

"जतन मियां की तरह सतन मियां की भी एक रखैल थी। वह एक बेवा कुंजड़िन थी। जो पास के एक गांव में रहती थी उसका नाम अल्लाह राखी था लेकिन बड़े भाई की तरह सतन मियां उसे प्यार ना कर सके। सिर्फ धोखा।"6

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारतीय समाज में महिलाओं की दशा और दयनीय स्थि को जस का तस रखने में असगर वाजहत ने यकीन रखा है जबकि स्वयं प्रकाश अपनी कहानियों के द्वारा सशक्त स्त्री चरित्र गढ़ने का प्रयास करते हैं। वह स्त्री मंजू फालतू, और स्निग्धा के रूप में हमें दिखाई देती है।

अगले अध्याय में हम नये सदी के सवाल पर असगर वजाहत और स्वयं प्रकाश के विचारों को उनकी कहानियों में समझने का प्रयास करेंगे।

संदर्भ-

1. जिने लाहोर नई देख्या वो जम्या ही नहीं- असगर वजाहत पृष्ठ-52
2. मैं हिंदू हूँ- अपनी अपनी पत्रियों का सांस्कृतिक विरासत- असगर वजाहत, पृष्ठ- 45
3. मैं हिंदू हूँ- अपनी अपनी पत्रियों का सांस्कृतिक विरासत- असगर वजाहत, पृष्ठ- 50
4. मैं हिंदू हूँ- अपनी अपनी पत्रियों का सांस्कृतिक विरासत- असगर वजाहत, पृष्ठ- 51
5. मैं हिंदू हूँ- अपनी अपनी पत्रियों का सांस्कृतिक विरासत- असगर वजाहत, पृष्ठ- 53